मुद्रा-स्फीति के कारण

मुद्रा-स्फीति का मुख्य कारण मुद्रा की माँग (अर्थात् उत्पादन) का मुद्रा की पूर्ति की अपेक्षा अधिक होना होता है। इसलिए मुख्य रूप से मुद्रा-स्फीति के कारण दो प्रकार के हैं—मुद्रा की मात्रा अथवा मौद्रिक आय में वृद्धि करने वाले, तथा उत्पादन की मात्रा में कमी करने वाले।

1. **मौद्रिक आय में वृद्धि** (Increase in Money Incomes) – मौद्रिक आय बढ़ जाने पर वस्तुओं तथा सेवाओं की माँग बढ़ जाना स्वाभाविक होता है। उत्पादन के उस अनुपात में न बढ़ने पर असन्तुलन की

Scanned with CamScanner

स्थिति उत्पन्न हो जाती है तथा कीमतें बढ़ने लगती हैं। मौद्रिक आय में वृद्धि निम्नलिखित कारणों से प्रभावित होती है :

(1) **सरकार की मुद्रा तथा साख सम्बन्धी नीति**—अत्यधिक मात्रा में पत्र-मुद्रा के निर्गमन द्वारा मुद्रा-प्रसार की स्थिति उत्पन्न होती है। यदि यह मात्रा उचित रूप से नियन्त्रित न हो तो मुद्रा-स्फीति को प्रोत्साहित करती है जो कालान्तर में भयंकर रूप भी धारण कर सकती है। केन्द्रीय बैंक की ब्याज-दर-नीति (bank rate policy) तथा खुले बाजार में प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय (open market operation) साख की मात्रा को प्रभावित करते हैं। नीची बैंक-दर होने पर ऋणों के लिए माँग बढ़ती है तथा साख का प्रसार होता है। इसी प्रकार केन्द्रीय बैंक द्वारा खुले बाजार में प्रतिभूतियाँ (securities) खरीदने पर प्रचलन में मुद्रा की मात्रा बढ़ती है। सरकार तथा केन्द्रीय बैंक की मौद्रिक नीति के परिणामस्वरूप चलन तथा साख की मात्रा बढ़ने से मौद्रिक आय बढ़ती है जो असन्तुलन की स्थिति में मुद्रा-स्फीति का एक महत्वपूर्ण कारण बन जाती है।

(2) **वाणिज्य बैंकों की साख-नीति**—साख की माँग अधिक होने पर वाणिज्य बैंक अपनी जमाराशियों (deposits) के पीछे रखे जाने वाले नकद कोषों के अनुपात को कम करके अधिक साख का निर्माण करते हैं। साख का विस्तार मुद्रा-स्फीति का एक महत्वपूर्ण कारण हो सकता है।

(3) **मुद्रा की चलन-गति में वृद्धि**—लोगों की उपभोग-प्रवृत्ति (propensity to consume) तथा पूँजी की सीमान्त क्षमता (marginal efficiency of capital) बढ़ जाने के कारण अथवा तरलता-प्राथमिकता (liquidity preference) कम हो जाने के कारण बचत की मात्रा कम होती है तथा मुद्रा की चलन-गति (velocity) बढ़ जाती है, विशेष रूप से तेजी की स्थिति में तो चलन-गति काफी अधिक होती है। चूँकि चलन-गति मुद्रा की पूर्ति को प्रभावित करती है इसलिए इसमें वृद्धि के कारण कीमतों में वृद्धि होती है तो मुद्रा-स्फीति को प्रोत्साहन मिलता है।

(4) **घाटे की वित्त-व्यवस्था** (Deficit Financing)—सरकार का व्यय आय से अधिक होने पर घाटे को अधिक मुद्रा-निर्गमन अथवा साख-प्रसार द्वारा पूरा करना घाटे की वित्त-व्यवस्था अथवा हीनार्थ-प्रबन्धन कहलाता है। पाश्चात्य देशों में यह घाटा प्रायः जनता तथा बैंकों से ऋण लेकर पूरा किया जाता है जिसके परिणामस्वरूप साख की मात्रा में वृद्धि होती है। परन्तु भारत जैसे अर्द्ध-विकसित देशों में सरकार केन्द्रीय बैंक से ऋण लेती है। केन्द्रीय बैंक सरकारी प्रतिभूतियों के आधार पर मुद्रा के निर्गमन की मात्रा को बढ़ाकर घाटे को पूरा कर देती है। इस प्रकार हीनार्थ-प्रबन्धन से मुद्रा-प्रसार होता है, मौद्रिक आय में वृद्धि होती है तथा मुद्रा-स्फीति की स्थिति उत्पन्न होती है।

(5) **अनुत्पादक व्यय में वृद्धि**—सरकार द्वारा ऐसा व्यय बढ़ने पर जो उत्पादन-वृद्धि में सहायक नहीं होता, मुद्रा-स्फीति की स्थिति उत्पन्न होती है। युद्ध तथा रक्षा सम्बन्धी व्यय इसी प्रकार का होता है। प्रशासन सम्बन्धी व्यय में कर्मचारियों के वेतन तथा भत्ते बढ़ने के कारण अथवा प्रशासन के विस्तार के कारण वृद्धि होने पर उत्पादन में प्रायः कोई वृद्धि नहीं होती जबकि मौद्रिक आय में वृद्धि होती है। दीर्घकालीन उत्पादन के कार्यों में विनियोग (investment) के रूप में लगे धन की वृद्धि से भी तत्काल उत्पादन में वृद्धि न होने के कारण उस समय तक मुद्रा-स्फीति की स्थिति रहने की सम्भावना रहती है जब तक कारखानों का पूर्ण निर्माण नहीं हो जाता तथा उनसे उत्पादन प्राप्त नहीं होने लगता।

(6) **वित्तीय अव्यवस्था**—सरकार द्वारा लगाये गये करों की पूरी वसूली न होने पर '**बिना हिसाब की मुद्रा**' (unaccounted money) की मात्रा बढ़ जाती है। यह अनियन्त्रित रूप से वस्तुओं तथा सेवाओं की माँग पर दबाव डालती है, जिसके कारण कीमतों में वृद्धि होती है तथा मुद्रा-स्फीति की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त **बढ़ती हुई जनसंख्या की मौद्रिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए, बिना उत्पादन की मात्रा में पर्याप्त वृद्धि किये, मुद्रा की मात्रा बढ़ना तथा बिना उत्पादकता बढ़े श्रम तथा अन्य साधनों की आय में वृद्धि करना,** मौद्रिक आय में वृद्धि के अन्य कारण हो सकते हैं, जिनके परिणामस्वरूप मुद्रा-स्फीति को बल प्राप्त होता है। प्रायः यह देखा गया है कि **विदेशी पूँजी का निरन्तर आयात परोक्ष रूप में मुद्रा-स्फीति का आयात होता है।**

2. **उत्पादन में कमी**—उत्पादन में कमी के निम्नलिखित कारण हो सकते हैं :

(1) **प्राकृतिक कारण**—बाढ़, भूकम्प, सूखा आदि प्राकृतिक विपत्तियाँ उत्पादन की मात्रा को कम कर देती हैं। इनका प्रभाव मुख्य रूप से कृषि-उत्पादन पर पड़ता है, इसलिए एक कृषि-प्रधान देश में सदा अनिश्चितता की स्थिति बनी रहती है। इन कारणों से कृषि-उत्पादन में कमी होने पर उद्योगों के लिए कच्चे माल की कमी हो जाती

Scanned with CamScanner

है तथा कीमतें बढ़ती हैं। उपभोक्ता के लिए अन्न की कमी तथा खाद्य-पदार्थों की कीमतों में वृद्धि होती है। मौद्रिक आय स्थिर रहने पर भी यदि किसी वर्ष में प्राकृतिक कारणों से उत्पादन कम हो जाता है, तो मुद्रा-स्फीति के लक्षण प्रकट हो जाते हैं।

(2) उत्पत्ति ह्रास नियम के अन्तर्गत उत्पादन—उत्पत्ति ह्रास नियम (Law of Diminishing Returns) के लागू होने से अधिक लागत पर कम उत्पादन प्राप्त होता है। उत्पादन-लागत में वृद्धि के परिणामस्वरूप कीमतें बढ़ती हैं तथा मुद्रा-स्फीति की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। दूसरे शब्दों में, **विनियोग के अनुपात में उत्पादन कम होना** मुद्रा-स्फीति का एक महत्वपूर्ण कारण हो सकता है।

(3) **कच्चे माल की कमी**—उत्पादन में वृद्धि तभी सम्भव होती है जब पर्याप्त मात्रा में कच्चा माल उपलब्ध हो। देश में उपलब्ध न होने पर इसे विदेशों से सुविधापूर्वक उचित मूल्य पर प्राप्त किया जा सके। कच्चे माल की कमी के कारण उत्पादन में कमी होगी तथा मुद्रा-स्फीति का वातावरण उत्पन्न हो जायेगा।

(4) **सरकार की कर तथा व्यापार सम्बन्धी नीति**—उत्पादन पर अधिक कर होने के कारण वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि होती है तथा उनकी माँग कम हो जाने के कारण उनका उत्पादन भी गिर जाता है। इसके अतिरिक्त, सरकार द्वारा निर्यात (export) को प्रोत्साहन देने पर देश में वस्तुओं की मात्रा कम हो जाती है तथा कीमतें बढ़ने लगती हैं। इस प्रकार सरकार की आर्थिक नीति भी मुद्रा-स्फीति का एक कारण बन सकती है।

(5) उत्पादन के तरीके—यदि उत्पादन के प्राचीन तथा अनुपयुक्त तरीके अपनाये जाते हैं तो उत्पादन-लागत अधिक होती है तथा उत्पादन की मात्रा कम। तकनीकी (technical) जानकारी के अभाव तथा उत्पादन के वैज्ञानिक व उन्नत तरीके न अपनाने पर उत्पादन की मात्रा नहीं बढ़ पाती तथा मुद्रा-स्फीति की स्थिति उत्पन्न होने की सम्भावना बनी रहती है।

(6) औद्योगिक अशान्ति—मजदूरों तथा मालिकों के बीच सहयोग की सम्भावना न होने पर जब मजदूर अपने श्रमिक-संघों (trade unions) को संगठित कर हड़तालें आदि करते हैं और उनके विरोध में मिल-मालिक तालेबन्दी की नीति अपनाते हैं, तो उत्पादन में कमी होना स्वाभाविक होता है और इसका परिणाम मुद्रा-स्फीति होती है।

(7) उत्पादन का ढाँचा—उत्पादन के ढाँचे में असन्तुलन के कारण भी मुद्रा-स्फीति हो सकती है। किसी भी देश में अनेक प्रकार की वस्तुओं के उत्पादन की आवश्यकता होती है। परन्तु यदि उपभोग के पदार्थों के उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि नहीं होती तथा अन्य पदार्थों के उत्पादन को अत्यधिक महत्व दिया जाता है तो आय में वृद्धि होती है, परन्तु आय के बदले में प्राप्त की जाने वाली वस्तुओं की मात्रा कम होने के कारण उनकी कीमतें ऊँची होती हैं तथा मुद्रा-स्फीति का वातावरण उत्पन्न हो जाता है। युद्ध-काल में मुद्रा-स्फीति का कारण उत्पादन के ढाँचे में परिवर्तन होना ही होता है। इस प्रकार एक विकासशील देश जो उपभोग उद्योगों के विकास की ओर विशेष ध्यान नहीं देता तथा आधार-उद्योगों (basic industries) को प्राथमिकता देता है, मुद्रा-स्फीति को निमन्त्रण देता है।

उपर्युक्त कारणों के परिणामस्वरूप जब कभी मुद्रा एवं साख की मात्रा तथा उपलब्ध उत्पादन की मात्रा में असन्तुलन की स्थिति उत्पन्न होगी, तो मुद्रा-स्फीति की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। इसका अर्थ यह नहीं कि मुद्रा की मात्रा में वृद्धि अथवा उत्पादन की मात्रा में कमी का परिणाम सदा मुद्रा-स्फीतिक ही होता है। वास्तव में मुद्रा-स्फीति इन दोनों में असन्तुलन की स्थिति का परिणाम होती है।

मुद्रा की मात्रा तथा मौद्रिक आय में वृद्धि करने वाले तत्व माँग-प्रेरित स्फीति उत्पन्न करते हैं। दूसरी ओर उत्पादन में कमी से सम्बन्धित तत्व उत्पादन-लागत में वृद्धि उत्पन्न करते हैं। बढ़ी हुई माँग तथा बढ़ी हुई लागतों का सम्मिलित प्रभाव कीमतों में वृद्धि उत्पन्न करता है। एक तत्व दूसरे तत्व को शक्ति प्रदान करता है जिससे कीमतें लगातार बढ़ती जाती हैं। आर्थिक असन्तुलन एक बार उत्पन्न होने पर इसमें वृद्धि की गति निरन्तर बढ़ती जाती है।

मुद्रा-स्फीति के प्रभाव

मुद्रा-स्फीति एक आर्थिक रोग है, जो सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था को प्रभावित करता है। प्रो. सी. एन. वकील के शब्दों में, "मुद्रा-स्फीति एक डाकू के समान है। दोनों ही अपने-अपने शिकारों को उनकी कुछ वस्तुओं से वंचित

Scanned with CamScanner

कर देते हैं। अन्तर बस इतना है कि डाकू दिखायी देता है, मुद्रा-स्फीति दिखायी नहीं देती। डाकू का शिकार एक समय केवल एक अथवा थोड़े-से व्यक्ति होते हैं, मुद्रा-स्फीति का शिकार सम्पूर्ण राष्ट्र होता है। डाकू को न्यायालय में घसीटकर लाया जा सकता है, किन्तु मुद्रा-स्फीति वैधानिक होती है।"

मुद्रा-स्फीति के परिणामस्वरूप सभी वस्तुओं तथा सेवाओं की कीमतों में समान रूप से परिवर्तन नहीं होते, न ही समाज में सभी व्यक्तियों अथवा वर्गों की मौद्रिक आय में समान रूप से वृद्धि होती है। आय के वितरण में असमानता तथा रोजगार एवं उत्पत्ति के साधनों की स्थिति में परिवर्तन के कारण मुद्रा-स्फीति का प्रभाव समाज के विभिन्न वर्गों पर अलग-अलग पड़ता है।

विभिन्न वर्गों पर प्रभाव

मुद्रा के मूल्यों में परिवर्तन के प्रभाव के अध्ययन के लिए प्रो. केन्स ने समाज को तीन वर्गों में बाँटा है—**व्यापारी अथवा उत्पादक वर्ग, विनियोगी वर्ग** तथा **श्रमिक या कर्मचारी वर्ग**। इनके अतिरिक्त हम दो अन्य वर्ग भी ले सकते हैं—**उपभोक्ता वर्ग** तथा **ऋणी** या **ऋणदाता वर्ग**। यह स्मरण रहे कि समाज के विभिन्न वर्गों को व्यावहारिक रूप में एक-दूसरे से पूर्णतया अलग नहीं किया जा सकता। इसलिए एक ही व्यक्ति पर मुद्रा-स्फीति के अलग-अलग प्रकार के प्रभाव पड़ते हैं, परन्तु सुविधा के लिए निम्नलिखित वर्गों को ही अध्ययन का आधार माना है :

उत्पादक वर्ग (Producers) – इस वर्ग में हम कृषक, उद्योगपति, व्यापारी आदि को सम्मिलित कर सकते हैं। सामान्यतया मुद्रा-प्रसार के कारण इन लोगों को लाभ होता है, जिसके तीन प्रमुख कारण हैं :

(1) स्फीति-काल में उत्पादन-लागत में उस अनुपात में वृद्धि नहीं होती जिस अनुपात में कीमतें बढ़ती हैं। उत्पादन की क्रिया में कुछ समय लगता है। कच्चा माल पहले से ही खरीदा जाता है जिसकी कीमत बाद में बढ़ जाती है। इससे कम लागत पर उत्पादन करके उत्पादक तैयार माल को महँगे दामों में बेचता है।

(2) स्फीति-काल में वस्तुओं की माँग बहुत अधिक बढ़ जाती है और कीमतें तेजी से बढ़ती हैं। उत्पादक का माल शीघ्र ही बिक जाता है और उसकी पूँजी माल में फँसी (blocked) नहीं रहती।

(3) उत्पादन के खर्चे तथा मजदूरी उस अनुपात में नहीं बढ़ते जिस अनुपात में कीमतें बढ़ती हैं। इससे भी उत्पादकों को लाभ होता है।

उत्पादकों के समान व्यापारियों को भी मुद्रा-स्फीति से लाभ होता है, क्योंकि जिस समय वे माल खरीदते हैं, कीमतें अपेक्षाकृत कम होती हैं, जो माल के बिकने तक निरन्तर बढ़ती रहती हैं। इस प्रकार व्यापारियों को अप्रत्याशित लाभ (windfall gains) होता है। उनके द्वारा लिये गये ऋणों का भी वास्तविक मूल्य घट जाता है।

यह स्मरण रहे कि अधिक लाभ की प्राप्ति पूँजीवाद की जड़ों को कमजोर बना देती है। अस्थिरता तथा अनिश्चितता के वातावरण में सट्टेबाजी इत्यादि क्रियाओं को प्रोत्साहन मिलता है। केन्स के शब्दों में, "यदि मुद्रा के मूल्य में कमी विनियोग को हतोत्साहित करती है तो यह व्यापारियों को बदनाम भी करती है।"

निवेशक वर्ग (Investors) – इस वर्ग में उन लोगों को सम्मिलित किया जाता है जो उद्योग एवं व्यवसाय में अपने धन का निवेश (investment) करके उससे आय प्राप्त करते हैं। निवेशक दो प्रकार के होते हैं—प्रथम, वे जिनकी आय निश्चित होती है। इन लोगों ने सम्मिलित पूँजी वाली कम्पनियों के ऋण-पत्रों (debentures) अथवा सरकारी प्रतिभूतियों (government securities) में धन लगा रखा होता है जिस पर उन्हें निश्चित दर से ब्याज मिलती है। द्वितीय, वे जिनकी आय व्यापार अथवा कीमतों में परिवर्तन से प्रभावित होती है। इस श्रेणी में वे लोग आते हैं जिन्होंने सम्मिलित पूँजी वाली कम्पनियों के अंश (shares) खरीद रखे होते हैं तथा उन पर उन्हें लाभांश (dividend) प्राप्त होता है।

मुद्रा-स्फीति का प्रभाव दोनों वर्गों पर अलग-अलग पड़ता है। प्रथम वर्ग के लोगों की आय स्थिर होने के कारण मुद्रा-स्फीति के कारण उनकी वास्तविक आय (real income) बहुत गिर जाती है, क्योंकि उनकी आय के बदले में उन्हें प्राप्त होने वाली वस्तुओं तथा सेवाओं की मात्रा पहले की अपेक्षा कम हो जाती है। परन्तु द्वितीय वर्ग के लोगों को लाभ होता है, क्योंकि कम्पनियों के लाभ में वृद्धि होती है तथा निवेशकों को प्राप्त होने वाले लाभांश बढ़ जाते हैं।

Scanned with CamScanner

कुछ निवेशकों को प्राप्त होने वाले लाभ में वृद्धि होने पर भी वास्तविकता यह है कि मुद्रा-स्फीति की दशा में सभी निवेशों की रकम का वास्तविक मूल्य कम हो जाता है तथा दीर्घ काल में उन्हें घाटा ही होता है। स्फीति-काल में लगायी गयी अतिरिक्त मशीनें आदि स्फीति के पश्चात् बेकार हो जाती हैं और निवेश की पूरी रकम ही डूबती दिखायी पड़ती है।

श्रमिक अथवा वेतनभोगी वर्ग (The Wage-earners) – इस वर्ग में वे लोग आते हैं जो अपनी सेवाओं की बिक्री से आय प्राप्त करते हैं। औद्योगिक तथा कृषि-मजदूर, दफ्तरों के कर्मचारी, अध्यापक तथा पेन्शन प्राप्त करने वाले लोग इसी वर्ग में आते हैं। स्फीति के कारण सबसे अधिक कष्ट मध्यम वर्ग (middle class) को होता है, क्योंकि इस वर्ग में अधिकतर वेतन प्राप्त करने वाले अधिकारी, बुद्धिजीवी, पेन्शन प्राप्त करने वाले, ब्याज की आय व मकान के किराये के सहारे जीवन-निर्वाह करने वाले लोग सम्मिलित होते हैं, जो कीमतें बढ़ जाने पर अपनी आय नहीं बढ़ा पाते। **केमरर** के शब्दों में, "मध्यम वर्ग, जो अपने कड़े परिश्रम तथा बचत करने की आदत के द्वारा अपने बच्चों को शिक्षा देने व भविष्य में बीमारी तथा वृद्धावस्था का सामना करने के उद्देश्य से कुछ बचत का निश्चय करता है, मुद्रा-स्फीति के दिनों में अपने को गम्भीर परिस्थिति में पाता है। आय की तुलना में रहन-सहन का व्यय अधिक बढ़ जाता है। सारी बचत समाप्त हो जाती है तथा कठिन परिश्रम, स्वतन्त्रता व बचत करने की आदत झूठे देवता दिखायी पड़ते हैं। ऐसी परिस्थिति में मध्यम वर्ग पर निराशा तथा असफलता की भावना के बादल छा जाते हैं।"[1]

श्रमिकों की मजदूरी सदा कीमतों के पीछे रहती है। मुद्रा-स्फीति के परिणामस्वरूप कीमतों में वृद्धि होने पर मजदूरी को साथ-साथ नहीं बढ़ाया जा सकता। इस सम्बन्ध में यह बता देना आवश्यक है कि श्रमिकों पर मुद्रा-स्फीति का प्रभाव इतना अधिक नहीं पड़ता जितना मध्यम वर्ग के लोगों पर पड़ता है। श्रमिक-संघों के संगठन द्वारा मजदूर मालिकों पर दबाव डालते हैं कि जीवन-निर्वाह-व्यय में वृद्धि के साथ उनकी मौद्रिक आय में भी वृद्धि की जाय और उन्हें अधिक महँगाई भत्ते दिये जायें ताकि उनकी वास्तविक आय में कमी न आने पाये। इसके अतिरिक्त स्फीति-काल में रोजगार की स्थिति भी अच्छी होती है, जिससे श्रमिकों को लाभ होता है। श्रमिकों को ये सब लाभ होते हुए भी प्रायः यह देखा गया है कि कीमतों के निरन्तर बढ़ते रहने पर मजदूरी पिछड़ जाती है तथा मजदूर अपनी वास्तविक आय को स्थिर नहीं रख पाते। परिणामस्वरूप औद्योगिक झगड़ों तथा हड़तालों आदि में वृद्धि होती है।

उपभोक्ता वर्ग (Consumers) – समाज का प्रत्येक व्यक्ति उपभोक्ता है और इस रूप में उस पर मुद्रा-स्फीति का प्रभाव अवश्य पड़ता है। यदि आय पर ध्यान न दिया जाय तथा व्यय के आधार पर ही देखा जाय तो प्रत्येक उपभोक्ता पर मुद्रा-स्फीति का बुरा प्रभाव पड़ता है। कुछ लोग अवश्य ऐसे होते हैं जिनकी आय स्फीति-काल में बढ़ती है। उपभोक्ता के रूप में उनको स्फीति से अधिक हानि नहीं होती। परन्तु ऐसे लोगों को जिनकी आय में कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता, मुद्रा-स्फीति के कारण बहुत कष्ट उठाना पड़ता है। उनकी वास्तविक आय निरन्तर कम होती जाती है और वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाते तथा उनका जीवन-स्तर गिर जाता है। मुद्रा-स्फीति उपभोक्ता को बुरी भाँति लूटती है और वह बेबस देखता रह जाता है।

ऋणी तथा ऋणदाता वर्ग (Debtors and Creditors) – मुद्रा-स्फीति से ऋणी वर्ग को लाभ तथा ऋणदाता वर्ग को हानि होती है। कीमत-स्तर में वृद्धि होने पर पहले से दिये गये ऋणों पर ब्याज की दर नहीं बढ़ती जिसके कारण ऋणदाता को मिलने वाली ब्याज की क्रय-शक्ति कम हो जाती है। यदि स्फीति-काल में ही ऋणी मूलधन लौटा देता है तो ऋणी को लाभ तथा ऋणदाता को हानि होती है, क्योंकि जब ऋण दिया गया था उस समय उसकी क्रय-शक्ति अधिक थी, परन्तु अब जब लौटाया जा रहा है तो उसकी क्रय-शक्ति गिरी हुई है। प्रायः यह कहा जाता है कि स्फीति-काल में ऋणों के लिए माँग अधिक होने के कारण ऋणदाता को यह लाभ होता है कि उसे अधिक ऊँची ब्याज-दर प्राप्त होती है, जबकि ऋणी को ऊँची ब्याज-दर के कारण हानि होती है। इस सम्बन्ध में यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि ब्याज-दर बढ़ने से ऋणी को वास्तव में हानि नहीं होती क्योंकि वह अधिक लाभ का उपार्जन कर रहा होता है, जबकि ऋणदाता ऊँची ब्याजदर के लालच में पूरी रकम को ही खतरे में डाल देता है। निरन्तर कीमतें बढ़ते रहने से हो सकता है कि ऋण की रकम वापस लौटाने पर बहुत ही कम क्रय-शक्ति रह जाय। ऋणदाता को लाभ तभी हो सकता है जब कीमतों की वृद्धि-दर ब्याज-दर से कम हो, अधिक

---

1 E. W. Kemmerer : *The, A. B. C. of Inflation*, p. 94.

Scanned with CamScanner

नहीं। मान लीजिए, ब्याज-दर 10 प्रतिशत वार्षिक है जबकि मुद्रा का मूल्य 20 प्रतिशत वार्षिक की दर से घट रहा है, तो ऋणदाता को हानि होना स्वाभाविक ही है।

समाज में विभिन्न वर्गों को प्रभावित करने के अतिरिक्त मुद्रा-स्फीति के कुछ अन्य आर्थिक, नैतिक अथवा सामाजिक तथा राजनीतिक प्रभाव होते हैं, जिनमें से कुछ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

आर्थिक प्रभाव

स्फीति-काल में उत्पादन तथा रोजगार में वृद्धि होती है तथा उत्पादकों, व्यापारियों और ऋणियों को लाभ प्राप्त होता है। परन्तु मुद्रा-स्फीति के दुष्परिणाम भी कम नहीं होते। इससे न केवल उपभोक्ताओं, निवेशकों तथा ऋणदाताओं को हानि होती है, बल्कि अनेक अन्य आर्थिक समस्याएँ भी उत्पन्न हो जाती हैं जो निम्नलिखित हैं :

(1) **धन का पुनर्वितरण**—स्फीति-काल में धन तथा आय के वितरण में असमानताएँ बढ़ जाती हैं। उद्योगपति, व्यापारी तथा परिवर्तनशील आय वाले निवेशक जो पहले से ही धनी होते हैं, स्फीति-काल में अधिक लाभ की प्राप्ति के कारण अधिकाधिक धनी होते जाते हैं। दूसरी ओर, श्रमिक, वेतनभोगी तथा निश्चित आय वाले उपभोक्ता अनेक कठिनाइयों का सामना करते हैं तथा अधिकाधिक निर्धन होते जाते हैं। उनकी वास्तविक आय निरन्तर घटती जाती है। धन तथा आय के वितरण में पहले से अधिक विषमताएँ उत्पन्न होना समाज में आर्थिक कल्याण की मात्रा को कम कर देता है।

(2) **मुद्रा में अविश्वास**—मुद्रा का मूल्य निरन्तर घटते जाने के कारण लोगों का मुद्रा में विश्वास कम हो जाता है जिनके परिणामस्वरूप बचतें हतोत्साहित होती हैं। बचत में कमी का प्रभाव निवेश पर पड़ना स्वाभाविक होता है। हॉट्रे के अनुसार, "मुद्रा-प्रसार के कारण मुद्रा में अविश्वास उत्पन्न हो जाता है और इसके फलस्वरूप दीर्घकालीन ऋणों का देना बन्द हो जाता है अथवा ऋणदाता मूल्य में हानि के जोखिम की क्षतिपूर्ति के रूप में ब्याज की बहुत ऊँची दर माँगते हैं।"[1]

(3) **करों में वृद्धि**—स्फीति-काल में सरकार का व्यय भी बढ़ जाता है जिसकी पूर्ति के लिए सरकार अधिकाधिक प्रत्यक्ष तथा परोक्ष कर लगाती है जिनसे आय कम हो जाती है तथा वस्तुओं की कीमतों में कर के रूप में वृद्धि होती है। प्रत्यक्ष कर, जो आय तथा सम्पत्ति पर हैं, सरकार द्वारा बहुत अधिक नहीं बढ़ाये जा सकते, क्योंकि उनसे अधिक उत्पादन हतोत्साहित होता है। पूँजीपति वर्ग के लोग संगठित रूप से सरकार पर दबाव भी डालते हैं और सरकार को प्रायः उनके आगे झुकना पड़ता है। परोक्ष करों में अधिक वृद्धि के कारण करों का उपभोक्ता पर भार बहुत अधिक बढ़ जाता है।

(4) **सार्वजनिक ऋणों में वृद्धि**—स्फीति-काल में सरकार बजट के घाटे की पूर्ति के लिए यदि हीनार्थ-प्रबन्धन (deficit financing) का ही सहारा ले तो स्थिति और अधिक बिगड़ जाने का भय होता है। करों में वृद्धि भी असीमित रूप से नहीं की जा सकती, इसलिए सरकार अधिक ऋण लेती है। यदि यह ऋण बैंकों से लिया जाय तो साख का प्रसार होता है, लोगों से ऋण लेने पर उनके पास मुद्रा की मात्रा कम हो जाती है, जिससे मुद्रा-स्फीति के नियन्त्रण में सहायता मिलती है। परन्तु इन ऋणों की ब्याज के रूप में सरकार के ऊपर इतना बोझ बढ़ जाता है कि बजट के घाटे में प्रति वर्ष वृद्धि होती जाती है और सरकार आर्थिक संकट की स्थिति में रहती है।

(5) **विदेशी व्यापार में असन्तुलन**—आन्तरिक कीमत-स्तर बढ़ते जाने के कारण स्फीति-काल में आयातों (imports) को प्रोत्साहन मिलता है तथा निर्यात (exports) कम हो जाते हैं। इन परिस्थितियों में देश का व्यापार-सन्तुलन प्रतिकूल हो जाता है तथा सरकार को विदेशी विनिमय सम्बन्धी अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। विदेशी मुद्राओं की माँग बढ़ने के कारण उनका मूल्य देश की मुद्रा में बढ़ जाता है। मुद्रा-स्फीति की स्थिति वाला देश अधिक दिनों तक विनिमय-दरों में स्थिरता नहीं बनाये रख सकता और उसे अपनी मुद्रा का अवमूल्यन (devaluation) करना पड़ता है।

(6) **नियन्त्रित आर्थिक प्रणाली**—स्फीति-काल में सरकार को आर्थिक क्रियाओं पर अनेक नियन्त्रण लगाने पड़ते हैं, जैसे राशनिंग, मूल्य-नियन्त्रण इत्यादि। स्वतन्त्र आर्थिक प्रणाली समाप्त होने के कारण लोगों की सरकार पर निर्भरता बढ़ जाती है। व्यावहारिक रूप में सरकार अपने उद्देश्यों की पूर्ति भी नहीं कर पाती क्योंकि नियन्त्रण

1 R. G. Hawtrey : *Currency and Credit*, p. 193.

Scanned with CamScanner

को पूर्ण रूप से लागू करना सम्भव नहीं होता। लोगों को अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ पर्याप्त मात्रा में न मिलने पर काले बाजार (black market) का विकास होता है। नियन्त्रित कीमतों वाली आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन में कमी होने लगती है और ऐसी आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि होती है जिनकी कीमत बढ़ रही होती है। प्रो. मिल्टन फ्रिडमैन (Milton Friedman) के अनुसार दबी अथवा नियन्त्रित (suppressed) स्फीति खुली (open) स्फीति की तुलना में अधिक हानिकारक होती है।

उपर्युक्त आर्थिक दुष्परिणामों के कारण स्फीति पूँजीवाद की जड़ों को हिला देती है। जैसे-जैसे स्फीति के वेग में वृद्धि होती है, आर्थिक असन्तुलन भी बढ़ता जाता है। अधिक लाभ के प्रलोभन में उत्पादन बढ़ता जाता है, जबकि दूसरी ओर लोगों की वास्तविक आय में निरन्तर कमी के कारण उत्पादन के लिए माँग कम होने लगती है। परिणामस्वरूप अति-उत्पादन की स्थिति उत्पन्न होती है, कारखाने बन्द होने लगते हैं तथा बेरोजगारी फैलने लगती है। सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था अस्तव्यस्त हो जाती है तथा मन्दी की स्थिति उत्पन्न होती है।

अन्य प्रभाव

नैतिक प्रभाव—मुद्रा-स्फीति की दशा में प्रत्येक व्यक्ति अपनी आय बढ़ाने के लिए चिन्तित रहता है और इसके लिए वह कैसे भी साधन अपनाने को तैयार हो जाता है, भले ही वे अनुचित तथा अनैतिक हों। चोरबाजारी, मुनाफाखोरी, भ्रष्टाचार तथा घूसखोरी आदि बुराइयों को प्रोत्साहन मिलता है तथा समाज का नैतिक पतन हो जाता है। फ्रांन्सीसी क्रान्ति-काल में मुद्रा प्रसार के कारण "फ्रान्स के प्रमुख शहरों में विलासिता तथा दुराचार, जो लूटने की अपेक्षा अधिक गम्भीर दोष थे, चारों ओर फैल गये थे। देश में जुए की भावना दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। यह दुराचार केवल व्यापारियों तक ही सीमित नहीं था बल्कि इसका श्राप उन उच्च सरकारी अधिकारियों व नेताओं में भी फैल गया था जो कुछ ही समय पूर्व विलासिता, बेईमानी तथा लापरवाही के दोषों से दूर रहते थे।"[1] जर्मनी में युद्ध-पश्चात् काल में अति-स्फीति की व्यवस्था में तो लोगों का इतना अधिक नैतिक पतन हुआ था कि "नवयुवतियाँ अपने दोषों की बड़ी शेखी से व्याख्या करती थीं। सोलह साल की अवस्था तक पवित्र कुमारी रहना उन दिनों बर्लिन में लज्जाजनक समझा जाता था। प्रत्येक लड़की अपने दूषित अनुभवों को बताने में गर्व समझती थी।"[2] प्रो. गैलब्रेथ (Galbraith) ने व्यंग्यपूर्ण शब्दों में लिखा है कि "मौद्रिक आय की दृष्टि से यदि विचार किया जाय तो जिस समाज में लगातार मुद्रा-स्फीति है उसमें निस्सन्देह शिक्षक, धर्म-गुरु या पुलिस का कार्य करने की अपेक्षा सट्टेबाजी या वेश्यावृत्ति करना अधिक लाभदायक है।"

राजनीतिक प्रभाव—मुद्रा-स्फीति के केवल आर्थिक तथा सामाजिक प्रभाव ही नहीं होते, इसके राजनीतिक परिणाम भी होते हैं। मुद्रा-स्फीति काल में जनता में सरकार के प्रति असन्तोष बढ़ता है तथा तनावपूर्ण वातावरण उत्पन्न हो जाता है। राजनीतिक पार्टियाँ इस स्थिति से लाभ उठाती हैं तथा राज्य-सत्ता को बदल देती हैं। सन् 1923 से 1933 के बीच जर्मनी में हिटलर तथा उसकी नाजी पार्टी द्वारा सत्ता हथियाने का एक प्रमुख कारण उस समय विद्यमान मुद्रा-स्फीति की भयानक परिस्थिति थी। स्फीति के कारण जनता में असन्तोष होने पर ही इटली, स्पेन, फ्रान्स आदि में राजनीतिक परिवर्तन हुए थे। स्फीति के कारण मजदूर वर्ग असन्तुष्ट रहता है तथा राजनीतिक क्रान्ति के लिए प्रयत्न करता है। स्फीति-काल में सरकार द्वारा तरह-तरह के प्रतिबन्ध लगाने से व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को आघात पहुँचता है तथा प्रजातन्त्र अव्यावहारिक हो जाता है।

Scanned with CamScanner